15,17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 90

प्रतिक्रमण की उपादेयता

श्री अरुण मेहता

प्रतिक्रमण के आशय, उसकी आवश्यकता, उसके काल एवं उपादेयता पर शासन सेवा समिति के सदस्य श्री अरूण जी मेहता ने प्रस्तुत आलेख में सम्यक् प्रकाश डाला है। *-सम्पादक*

जैन धर्म एवं दर्शन का प्रमुख आधार आगम है। आगम बत्तीसी में बत्तीसवाँ सूत्र 'आवश्यक सूत्र' है। आवश्यक सूत्र में छह आवश्यक हैं, इनमें चौथा आवश्यक प्रतिक्रमण इस आगम का प्रमुख भाग है।

'प्रतिक्रमण' शब्द का आशय- 'प्रति+क्रमण' इन दोनों शब्दों के योग से प्रतिक्रमण शब्द बना है। प्रति का अर्थ है- पीछे की ओर, क्रमण का अर्थ है- चलना अथवा गति करना। अर्थात् जो अतिक्रमण यानी सीमा का उल्लंघन हुआ है वहाँ से वापस अपनी सीमा में आना प्रतिक्रमण है।

- व्रत नियमों की मर्यादा का जो उल्लंघन हुआ है, उस उल्लंघन से मर्यादा में वापस आना प्रतिक्रमण है।
- अशुभ योगों में गये हुए आत्मा का वापस शुभयोगों में आना प्रतिक्रमण है।
- प्रमाद के कारण विभाव में गई हुई आत्मा का वापस स्वभाव में आना प्रतिक्रमण है।
- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और अशुभयोग से आत्मा को हटाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र में लगाना प्रतिक्रमण है।
- किये हुए पापों की आलोचना-पश्चात्ताप कर उन्हें फिर न दोहराने का संकल्प करना प्रतिक्रमण है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रतिक्रमण एक प्रकार का आत्म-स्नान है, जिससे आत्मा कर्म रहित होकर हल्की व शुद्ध बनती है।

प्रतिक्रमण की आवश्यकता- जिस प्रकार यदि हमारे पैर में काँटा चुभ जाये अथवा आँखों में तिनका चला जाये तो हमारी गति एवं नजर में व्यवधान आ जाता है, जिससे आगे गति करना संभव नहीं होता है। ठीक इसी प्रकार साधक के लिये भी गृहीत व्रत-नियमों में यदि कोई अतिचार-दोष लगा हो तो उसका शोधन करना आवश्यक है। इससे चारित्र मार्ग में निरन्तर प्रगति होती है। व्रत-नियमों के अतिचारों का शोधन करने का अमोघ उपाय प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण के भेद- प्रतिक्रमण के प्रमुख दो भेद हैं- द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण।

(अ) द्रव्य प्रतिक्रमण- अंतरंग उपयोग रहित, दोष शुद्धि का विचार किये बिना, पुण्य फल की कामना से केवल परम्परा रूप से प्रतिक्रमण करना द्रव्य प्रतिक्रमण है। दोषों या पापों की शुद्धि के लिए शब्द रूप प्रतिक्रमण करना अथवा बिना उपयोग के पाठों का उच्चारण करना भी द्रव्य प्रतिक्रमण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ब) भाव प्रतिक्रमण- अंतरंग उपयोग के साथ, लोक-परलोक की कामना से रहित, मात्र अपनी आत्मा को कर्ममल से विशुद्ध बनाने के लिए, जिनाज्ञानुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण 'भाव प्रतिक्रमण' कहलाता है। प्रमादवश जो पाप दोष लगे हैं, उन्हें अकरणीय समझ कर उन दोषों का वापस सेवन नहीं करने के लिये सजग रहना 'भाव प्रतिक्रमण' है।

भाव-प्रतिक्रमण के बिना द्रव्य-प्रतिक्रमण से वास्तविक लाभ नहीं होता है। भाव प्रतिक्रमण से ही कर्म-निर्जरा एवं आत्मशुद्धि रूप वास्तविक फल की प्राप्ति होती है। अतः द्रव्य-प्रतिक्रमण से भाव-प्रतिक्रमण की ओर सदा अग्रसर होना चाहिये।

द्रव्य प्रतिक्रमण के बिना भाव प्रतिक्रमण की प्राप्ति संभव नहीं है। द्रव्य प्रतिक्रमण वह उर्वरा भूमि है, जिसमें भाव प्रतिक्रमण का बीज आसानी से पुष्पित-फलित किया जा सकता है।

प्रतिक्रमण कब? - जब जिस समय अतिचार दोष का सेवन हुआ है अथवा जब उसका ज्ञान एवं भान हो जाये, उसी समय साधक को अन्तर्मन से "मिच्छामि दुक्कडं" कहकर प्रतिक्रमण करना चाहिये। जितना शीघ्र हम प्रतिक्रमण करेंगे उतनी ही जल्दी हमारी आत्मा शुद्ध हो जायेगी।

हम जब तक प्रतिक्रमण नहीं करेंगे, हमारी आत्मा दूषित ही बनी रहेगी व उस दोष की अनुमोदना रूप पाप का बंध भी चलता रहेगा। जैनागम के अनुसार काल की अपेक्षा प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का है- १. दैवसिक २. रात्रिक ३. पाक्षिक ४. चातुर्मासिक और ५. सांवत्सरिक।

दिनभर में हुई भूलों को शाम को तथा रात-भर की भूलों को प्रातः ध्यान में लाकर प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। जो भूलें प्रमादवश शेष रह जायें तो उन्हें पन्द्रह दिन (पक्ष) के अंत में ध्यान में लाकर पाक्षिक प्रतिक्रमण द्वारा आत्म-शोधन करना चाहिये। फिर भी कदाचित् भूलें रह जाये तो चातुर्मास के अन्त में ध्यान में लाकर प्रतिक्रमण करना चाहिये। कदाचित् फिर भी कुछ सूक्ष्म-स्थूल भूलें रह जायें तो संवत्सर के अंत में सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण करके आत्म-शुद्धि करना अनिवार्य है।

इस प्रकार सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करके अपने पुराने खाते बराबर कर लें, कषायों को उपशांत कर लें, हृदय को सरल एवं विनम्र बनाकर सौम्यभाव की शीतल धारा में स्नान कर लें, यह प्रत्येक साधक के लिये अत्यावश्यक है।

जब प्रतिदिन प्रातः व सायं दोनों समय विधि सहित प्रतिक्रमण करने का विधान है तो फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण का विशेष विधान क्यों किया गया है?

हम जानते हैं कि मानव स्वभाव से विचित्र है। छद्मस्थ प्राणी होने के कारण जाने-अनजाने में भूल हो जाना स्वाभाविक है। कभी-कभी वह भूल करके भी तुरन्त उस पर पश्चात्ताप नहीं करता है। अहंकार में क्रोध की आग अंतर में धधकती रहती है और उसे शांत होने में कभी-कभी कुछ दिवस या माह तक लग जाते हैं। धीरे-धीरे जब मन शांत होता है, विरक्त होता है, तब मनुष्य को अपनी भूल का भान होता है, इसलिए उक्त पाँचों समयों में प्रतिक्रमण करने का विधान किया गया है।

हमें ऐसा भी नहीं सोचना चाहिये कि जब सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते हैं तो फिर शेष चार समयों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिक्रमण करने की उपयोगिता नहीं है। वर्ष भर में किये हुए पापों-अतिचारों का ध्यान वर्ष के अंत में एक साथ नहीं आ सकता। स्मरण-शक्ति कमजोर होने से बहुत सारे पाप आलोचना एवं शोधन करने से रह सकते हैं। जिस प्रकार यदि घर का सारा कचरा सिर्फ दीपावली के दिन ही साफ करें व वर्ष भर एकत्रित होने दें तो क्या स्थिति होगी, हम समझ सकते हैं। अतः प्रतिक्रमण जितना शीघ्र किया जाये उतना ही अच्छा है, इससे मन की कलुषता शीघ्रता से समाप्त हो जाती है।

आगम में बताया गया है कि साधु को प्रमादवश यदि कोई अतिचार-दोष लग जाये, परस्पर कलह हो जाये तब तुरन्त उसकी शुद्धि करना आवश्यक है। जब तक वह साधु प्रतिक्रमण-प्रायश्चित्त नहीं कर ले तब तक उसे आहार करना, विहार करना और यहाँ तक कि शास्त्र स्वाध्याय करना भी उचित नहीं है।

यदि वर्ष के अंत में संवत्सरी-प्रतिक्रमण भी हमने शुद्ध भावों से नहीं किया, दोष शुद्धि नहीं की तो हमारी कषाय अनंतानुबंधी-श्रेणी की हो जायेगी, जिससे हम सम्यक्त्व रूपी दुर्लभ रत्न को सुरक्षित नहीं रख पायेंगे।

प्रतिक्रमण सबके लिए- जिन्होंने किसी प्रकार के व्रत-नियम ग्रहण नहीं किये हैं, क्या ऐसे लोगों को भी प्रतिक्रमण से लाभ होता है? क्या उनके लिए भी यह आवश्यक है? इन प्रश्नों के उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि निम्न कारणों से प्रतिक्रमण करना प्रत्येक आत्मार्थी साधक के लिये आवश्यक है, चाहे उसने व्रत-नियम ग्रहण कर रखे हैं अथवा नहीं-

१. प्रतिक्रमण करने से व्रतों के स्वरूप की जानकारी एवं अव्रती की व्रत-ग्रहण करने की भावना बलवती बनती है।

२. प्रतिक्रमण करने से व्रतों में स्थिरता एवं दृढता आती है।

३. प्रतिक्रमण के पाठों में समकित व ज्ञान के अतिचारों का भी वर्णन है, अठारह पापों की आलोचना भी है जो करना सभी के लिये आवश्यक है।

४. अकरणीय कार्यों-कर्मादान आदि की जानकारी एवं उनसे बचते रहने की भावना दृढ़ बनती है।

५. वीतराग के वचनों पर श्रद्धा न रखी हो, सिद्धान्त विपरीत प्ररूपणा की हो, अथवा करने योग्य कार्य स्वाध्याय-ध्यान आदि न किया हो तो उसकी आलोचना करना भी सभी के लिये आवश्यक है।

६. आवश्यक सूत्र के छह आवश्यकों में से चौथे आवश्यक 'प्रतिक्रमण' में ही व्रतों की प्रमुखता है, शेष अन्य आवश्यक अव्रती के लिये भी लागू होते हैं।

७. जितना समय प्रतिक्रमण करने में व्यतीत होगा, उतने समय हमारे योगों की प्रवृत्ति शुभ रहेगी। अशुभ पापों व कर्मों के बंधन से उतने समय के लिये तो हमारा बचाव हो सकेगा।

८. स्वाध्याय होगा।

९. चारित्र की विशेष अभिवृद्धि होगी।

१०. कालेकाल शुद्ध प्रतिक्रमण करने से तीर्थंकर गोत्र का उपार्जन हो सकता है।

-४६७ ए, सातवीं ए रोड़, सरदारपुरा, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org